[११]

कर्मों की धूप-छाँह

दुःख का कारण कर्म-बंध :

बन्धुओ ! वीतराग जिनेश्वर ने, अपने स्वरूप को प्राप्त करके जो आनन्द की अनुभूति की, उससे उन्होंने अनुभव किया कि यदि संसार के अन्यान्य प्राणी भी, कर्मों के पाश से मुक्त होकर, हमारी तरह स्वाधीन स्वरूप में स्थित हो जायें, तो वे भी दुःख के पाश से बच जायेंगे यानी दुःख से उनका कभी पाला नहीं पड़ेगा। दुःख, अशान्ति, असमाधि या क्लेश का अनुभव तभी किया जाता, है, जबकि प्राणी के साथ कर्मों का बन्ध है।

दुःख का मूल कर्म और कर्म का मूल राग-द्वेष है। संसार में जितने भी दुःख हैं, वेदनायें हैं, वे सब कर्ममूलक ही हैं। कोई भी व्यक्ति अपने कृत कर्मों का फल भोगे बिना नहीं रह पाता। कर्म जैसा भी होगा, फल भी उसी के अनुरूप होंगे। प्रश्न होता है कि यदि दुःख का मूल कर्म है तो कर्म का मूल क्या है ? दुःखमूलक कर्म क्या स्वयं सहज रूप में उत्पन्न होता है या उसका भी कोई कारण है ? सिद्धान्त तो यह है कि कोई भी कार्य कारण के बिना नहीं होता। फिर भी उसके लिए कोई कर्ता भी चाहिये। कर्तापूर्वक ही क्रिया और क्रिया का फल कर्म होता है।

कर्म और उसके कारण :

परम ज्ञानी जिनेश्वर देव ने कहा कि कर्म करना जीव का स्वभाव नहीं हे। स्वभाव होता तो हर जीव कर्म का बंध करता और सिद्धों के साथ कर्म लगे होते। परन्तु ऐसा नहीं होता है। अयोगी केवली और सिद्धों को कर्म का बंध नहीं होता। इससे प्रमाणित होता है कि कर्म सहेतुक है, अहेतुक नहीं। कर्म का लक्षण बताते हुए आचार्य ने कहा—"कीरइ जिएण होउहिं।" जो जीव के द्वारा किया जाय, उसे कर्म कहते हैं। व्याकरण वाले क्रिया के फल को कर्म कहते हैं। खाकर आने पर उससे प्राप्त फल-भोजन को ही कर्म कहा जाता है। खाने की क्रिया से ही भोजन मिला, इसलिए भोजन कर्म कहाता है। सत्संग में आकर सत्संग के संयोग से कुछ ज्ञान हासिल करे, धर्म की बात सुने तो यहाँ श्रवण सुनने को भी कर्म कहा—जैसे "श्रवण: कर्म"। पर यहाँ इस प्रकार के कर्मों से मतलब नहीं है। यहाँ आत्मा के साथ लगे हुए कर्म से प्रयोजन है। कहा है—"जिएण हेउहिं, जेणं तो भण्णई कम्मं" यानी संसार की क्रिया का कर्म तो

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वतः होता है। परन्तु यह विशिष्ट कर्म स्वतः नहीं होता। यहाँ तो जीव के द्वारा हेतुओं से जो किया जाय, उस पुद्गल वर्गणा के संग्रह का नाम कर्म है।

कर्म के भेद और व्यापकता :

कर्म के मुख्यतः दो भेद हैं—द्रव्यकर्म और भावकर्म। कार्मण वर्गणा का आना और कर्म पुद्गलों का आत्मप्रदेशों के साथ सम्बन्धित होना, द्रव्य कर्म है। द्रव्य कर्म के ग्रहण करने की जो राग-द्वेषादि की परिणति है, वह भाव कर्म है।

आपने ज्ञानियों से द्रव्य कर्म की बात सुनी होगी। द्रव्य कर्म कार्य और भाव कर्म कारण है। यदि आत्मा की परिणति, राग द्वेषादिमय नहीं होगी, तो द्रव्य कर्म का संग्रह नहीं होगा। आप और हम बैठे हुए भी निरन्तर प्रतिक्षण कर्मों का संग्रह कर रहे हैं। परन्तु इस जगह, इसी समय, हमारे और आपके बदले कोई वीतराग पुरुष बैठें तो वे सांपरायिक कर्म एकत्रित नहीं करेंगे। क्योंकि उनके कषाय नहीं होने से, ईर्यापथिक कर्मों का संग्रह है। सिद्धों लिए भी ऐसी ही स्थिति है।

लोक का कोई भी कोना खाली नहीं है, जहां कर्मवर्गणा के पुद्गल नहीं घूम रहे हों। और ऐसी कोई जगह नहीं, जहां शब्द लहरी नहीं घूम रही हो। इस हाल के भीतर कोई बच्चा रेडियो (ट्रांजिस्टर) लाकर बजाये अथवा उसे आलमारी के भीतर रखकर ही बजाये तो भी शब्द लहरी से भी अधिक बारीक, सूक्ष्म कर्म लहरी है। यह आपके और हमारे शरीर के चारों ओर घूम रही है। और सिद्धों के चारों तरफ भी घूम रही है। परन्तु सिद्धों के कर्म चिपकते नहीं और हमारे आपके चिपक जाते हैं। इसका अन्तर यही है कि सिद्धों में वह कारण नहीं है, राग-द्वेषादि की परिणति नहीं है।

कर्म का मूल—राग और द्वेष :

ऊपर कहा जा चुका है कि हेतु से प्रेरित होकर जीव के द्वारा जो किया जाय, वह कर्म है। और कर्म ही दुःखों का का कारण है—मूल है। कर्म का मूल बताते हुए कहा कि—"रागो य दोसो, बीय कम्म बीयं।" यानी राग और द्वेष दोनों कर्म के बीज हैं। जब दुःखों का मूल कर्म है, तो आपको, दुःख निवारण के लिए क्या मिटाना है? क्या काटनी है? दुःख की बेड़ी। यह कब हटेगी? जब कर्मों की बेड़ी हटेगी—दूर होगी। और कर्मों की बेड़ी कब कटेगी? जब राग-द्वेष दूर होंगे।

बहुधा एकान्त और शान्त स्थान में अनचाहे भी सहसा राग-द्वेष आ घेरते हैं। एक कर्म भोगते हुए, फल भोग के बाद आत्मा हल्की होनी चाहिये, परन्तु साधारणतया इसके विपरीत होता है। भोगते समय राग-द्वेष उभर आते

Jain Educationa International	For Personal and Private Use Only	www.jainelibrary.org

या चिन्ता-शोक घेर लेते तो नया बंध बढ़ता जाता है। इससे कर्म परम्परा चालू रहती है। उसका कभी अवसान-अन्त नहीं हो पाता। अतः ज्ञानी कहते हैं कि कर्म भोगने का भी तुमको ढंग-तरीका सीखना चाहिये। फल भोग की भी कला होती है और कला के द्वारा ही उसमें निखार आता है। यदि कर्म भोगने की कला सीख जाओगे तो तुम नये कर्मों का बन्ध नहीं कर पाओगे। इस प्रकार फल भोग में तुम्हारी आत्मा हल्की होगी।

कर्म फल भोग आवश्यक :

शास्त्रकारों का एक अनुभूत सिद्धान्त है कि—"कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि।" तथा "अश्वयमेव भोक्तव्यं, कृतं कर्म शुभाशुभम्" यानी राजा हो या रंक, अमीर हो या गरीब, महात्मा हो या दुरात्मा, शुभाशुभ कर्म फल सब जीव को भोगना ही पड़ेगा। कभी कोई भूले-भटके सन्त प्रकृति का आदमी किसी गृहस्थ के घर ठंडाई कहकर दी गई थोड़ी मात्रा में भी ठंडाई के भरोसे भंग पी जाय तो पता चलने पर पछतावा होता है मगर वह भंग अपना असर दिखाए बिना नहीं रहेगी। बारम्बार पश्चात्ताप करने पर भी उस साधु प्रकृति को भी नशा आये बिना नहीं रहेगा। नशा यह नहीं समझेगा कि पीने वाला सन्त है और इसने अनजाने में इसे पी लिया है अतः इसे भ्रमित नहीं करना चाहिये। नहीं, हर्गिज नहीं। कारण, बुद्धि को भ्रमित करना उसका स्वभाव है। अतः वह नशा अपना रंग लाये बिना नहीं रहेगा। बस, यही हाल कर्मों का है।

भगवान् महावीर कहते हैं कि—"हे मानव ? सामान्य साधु की बात क्या ? हमारे जैसे सिद्धगति की ओर बढ़ने वाले जीव भी कर्म फल के भोग से बच नहीं सकते। मेरी आत्मा भी कर्म के वशीभूत होकर भव-भव में गोते खाती हुई कर्म फल भोगती रही है। मैंने भी अनन्तकाल तक भवप्रपंच में प्रमाद-वश कर्मों का बंध किया, जो आज तक भोगना पड़ रहा है। कर्म भोगते हुए थोड़ा सा प्रमाद कर गये, तो दूसरे कर्म आकर बंध गए, चिपक गए।"

मतलब यह है कि कर्मों का सम्बन्ध बहुत जबर्दस्त है। इस बात को अच्छी तरह समझ लिया जाये कि हमारे दैनिक व्यवहार में, नित्य की क्रिया में कोई भूल तो नहीं हो रही है ? नये कर्म बांधने में कितना सावधान हूँ ? कर्म भोगते समय कोई नये कर्म तो नहीं बंध रहे हैं ! इस तरह विचारपूर्वक काम करने वाला कर्मबंध से बच सकता है।

कर्मों की धूप-छांह :

परन्तु संसार का नियम है कि सुख के साथ दुःख आता है और साता के साथ असाता का भी चक्र चलता रहता है। यह कभी नहीं हो सकता कि शुभाशुभ कर्म प्रकृतियों में मात्र एक ही प्रकृति उदय में रहे और दूसरी उसके

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

साथ नहीं आये । ज्ञानियों ने प्रतिक्षण शुभाशुभ कर्मों का बंध और उदय चलता रहना बतलाया है । दृष्टान्त रूप से देखिये, अभी उस जाली के पास जहां आप धूप देख रहे हैं, घंटेभर के बाद वहां छाया आ जावेगी और अभी जहां दरवाजे के पास आपको छाया दिख रही है, कुछ देर के बाद वहाँ धूप आ जायेगी । इसका मतलब यह है कि धूप और छाया बराबर एक के पीछे एक आते रहते हैं । धूप-छांह परिवर्तन का द्योतक है । एक आम प्रचलित शब्द है, जिसका मतलब प्राय: प्रत्येक समझ जाता है कि यहां कोई भी वस्तु एक रूप चिरकाल तक नहीं रह सकती ।

जब मकान में धूप की जगह छाया और छाया की जगह धूप आ गई तो आपके तन, मन में साता की जगह असाता और असाता की जगह साता आ जाये, तो इसमें नई बात क्या है ? संयोग की जगह वियोग से आपका पाला पड़ा, तो कौनसी बड़ी बात हो जावेगी ? ज्ञानी कहते हैं कि इस संसार में आए तो समभाव से रहना सीखो । संयोग में जरूरत से अधिक फूलो मत और वियोग के आने पर आकुल-व्याकुल नही बनो, घबराओ नहीं । यह तो सृष्टि का नियम है—कायदा है । हर वस्तु समय पर अस्तित्व में आती और सत्ता के अभाव में अदृश्य हो जाती है । इस बात को ध्यान में रखकर सोचो कि जहां छाया है वहां कभी धूप भी आयेगी और जहां अभी धूप है, वहां छाया भी समय पर आये बिना नहीं रहेगी ।

अभी दिन है—सर्वत्र उजाला है । छ: बजे के बाद सूर्योदय हुआ । परन्तु उसके पहले क्या था । सर्वत्र अंधेरा ही तो था । किसी को कुछ भी दिखाई नहीं देता था । यह परिवर्तन कैसे हो गया ? अन्धकार की जगह प्रकाश कहां से आ गया ? तो जीवन में भी यही क्रम चलता रहता है । जिन्दगी एक धूप-छाँह ही तो है ।

हर हालत में खुश और शान्त रहो :

संसार के शुभ-अशुभ के क्रम को, व्यवस्था, ज्ञानीजन सदा समभाव या उदासीन भाव से देखते रहते हैं । उन्हें जगत् की अनुकूल या प्रतिकूल परिस्थितियाँ चंचल अथवा आन्दोलित नहीं कर पातीं । वे न तो अनुकूल परिस्थिति के आने पर हर्षोन्मत्त और न प्रतिकूलता में व्यथित एवं विषण्ण बनते हैं । सूरज की तरह उनका उदय और अस्त का रंग एक जैसा और एक भावों वाला होता है । वे परिस्थिति की मार को सहन कर लेते हैं, पर परिस्थिति के वश रंग बदलना नहीं जानते । जीवन का यही क्रम उनको सबसे ऊपर बनाये रखता है । अपनी मानसिक समता बनाये रखने के कारण ही वे आत्मा को भारी बनाने से बच पाते हैं । और जिनमें ऐसी क्षमता नहीं होती और जो इस तरह का व्यवहार नहीं बना पाते, वे अकारण ही अपनी आत्मा को भारी, बोझिल बना लेते हैं ।

□ □ □

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org